व
५०१

१५	७[illegible]	क्रो.	५[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मित्र	१९	१८	३	४						६	४७	५	१३	२३	२[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]त्र	२०	१९	४	५	सि.	३५	३	८	२१	६	४७	५	१३	२३	२५
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]क्ष	२१	२०	५	६						६	४७	५	१३	२३	२६
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२२	२१	६	७	क.	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२९	६	४७	५	१३	२३	२६
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]ा.	२३	२२	७	८						६	४७	५	१३	२३	२६
१४	८	व.	४६	८	१	१५	रक्ष	२४	२३	[illegible]	[illegible]	तु.	३४	०	२०	२३	६	४७	५	१३	२३	२६
१२	११	व.	४१	२५	२३	२३	मुसल	२५	२४	९	[illegible]						६	४७	५	१३	२३	२[illegible]
१०	५	कौ.	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२६	२५	१०	११	वृ.	[illegible]	७	२३	३८	६	४७	५	१३	२३	[illegible]
८	६	ग.	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मृत्यु	२७	२६	११	१२						६	४७	५	१३	२३	२[illegible]
१६	८	श.	५[illegible]	४	३	३७	पद्म	२८	२७	१२	१३	ध.	४८	२	२	०	६	४७	५	१३	२२	१८
१४	६	ना.	४६	१३	१	१६	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१३	१४						६	४७	५	१३	२३	१५

६५१६

गोविन्द [illegible]

७१६ मिश्रमानकालिका दैनिक स्पष्टग्रहास्तत्र [illegible]

मा.	[illegible]	मि. मा.		स.				चं.				स.			मं.	स.			बु.	स.			बृ.	[illegible]
१२	[illegible]	४४	२४	८	०	३२	[illegible]	२	१८	४२	५६	७	१४	४५	३५	७	९	२२	२८	७	२६	४	५७	६
[illegible]	[illegible]	४४	२२	८	१	३[illegible]	[illegible]	३	०	५४	३७	७	१५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४२	७	२६	१८	३०	६
१२	[illegible]	४४	२१	८	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४६	८	७	२६	३२	३	६
११	५[illegible]	४४	२०	८	३	३७	१७	३	२१	४९	३७	७	१६	५२	५५	७	[illegible]	२	६	७	२६	४५	३५	६
११	५[illegible]	४४	१८	८	४	३८	३८	४	८	३७	१२	७	१७	३५	२७	७	१४	२०	३४	७	२६	५९	६	६
११	५०	४४	१७	८	५	४०	०	४	२१	३९	५७	७	१८	१८	१	७	१५	४१	२५	७	२७	१२	३९	६
११	[illegible]५	४४	१६	८	६	४१	२३	५	४	५८	१७	७	१९	०	३७	७	१७	५	२४	७	२७	२६	१०	६
११	[illegible]१	४४	१५	८	७	४२	४६	५	१८	३१	४८	७	१९	४३	१६	७	१८	२९	२८	७	२७	३९	४१	६
११	[illegible]७	४४	१३	८	८	४४	९	[illegible]	२	१९	१८	७	२०	२५	५८	७	१९	५६	२४	७	२७	५३	१२	६
११	[illegible]३	४४	१२	८	९	४५	३३	६	१६	११	१	७	२१	८	४३	७	२१	२५	७	७	२८	६	४२	६
११	२९	४४	११	८	१०	४६	५८	७	०	२८	२७	७	२१	५१	२९	७	२२	५५	३१	७	२८	२०	[illegible]	७
११	२४	४४	१०	८	११	४८	२२	७	१४	४४	४२	७	२२	३४	१९	७	२४	२७	२५	७	२८	३३	३९	७
११	२०	४४	९	८	१२	४९	४७	७	२९	४	२६	७	२३	१७	१३	७	२६	०	४७	७	२८	४७	५	७
११	१६	४४	८	८	१३	५१	१३	८	१३	२३	३९	७	२४	०	८	७	२७	३५	२८	७	२९	०	३३	७

[illegible]स्तुतिः कुर्वन्तो निन्दितानि च । सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ॥ युद्धाय क्षत्रिया सृष्टाः स[illegible]
[illegible]स्तुतिः कृत्वा सौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥ कुन्त्युवाच । सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणु[illegible]
पुंसवनञ्चैव वीराजननमेव च । अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ विदा[illegible]

आत्मबोध भाषा टीका





रत प्रकाशन मन्दिर, मथुरा

व
७१८


४९८ * ॐ *

आत्मबोधः

तपोभिः क्षीणपापानां शांतानांवीतरागिणाम्।
मुमुक्षूणामपेक्षोऽयमात्मबोधो विधीयते १

अन्वयः—तपोभिः द्वन्द्वसहनादिभिः द्वन्द्वसहनं तपः (योग भाष्यम्) उपवासपरकादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । शरीर शोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम् ॥ क्षीणपापानाम् नष्टपापानाम । येषां त्वन्त-गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ शान्तानामन्तरेन्द्रिय निग्रह कर्तृणाम । वीतरागिणाम् वैराग्यवताम्। दृष्टानुश्राविकविषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् इति योगसूत्रे स. पा. सू. १५ । मुमुक्षूणाम् मुक्तिसाधकानाम् अपेक्षः अयम् आत्मबोधग्रन्थः विधीयते विधानं क्रियते ।

भाषा—जिन्होंने अनेकों तपस्याओं से पापों का नाश कर दिया है, एवं इन्द्रियों को वश करने से जिनकी वृत्तियां शांत होगयी हैं। मोक्ष चाहने वाले उन मुमुक्षुओं के हितार्थ यह आत्मबोध बनाया जाता है।

अवतरण—मोक्षके और भी अनेक साधन शास्त्रों में मिलते हैं किन्तु आत्मज्ञान मोक्षका मुख्य साधन है। इसीको स्पष्ट बताते हैं।

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति २

अन्वय:–हि यत: अन्यसाधनेभ्य: ,इतरमोक्षसम्पादक साधनेभ्य: यथा–"किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे निसत्तम। यत्परं यद्गुणाऽतीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्। इत्यादीनि अन्यसाधनानि । तेषु मोक्षैकसाधनं मुख्यसाधनं बोध: आत्मज्ञानमेव। पाकस्य यथा अन्यान्यपि घटेन्धनानि साधनानि सन्ति परं तेषु मुख्यसाधको वह्नि: वह्न्यभावे सर्वाणि स धनानि निष्फलानि । तथैव ज्ञानं विना आत्मज्ञान विना मोक्षो न सिद्ध्यति मोक्षे अन्यानि स्नान, जप, ध्यानानि सहकारि साधनानि मुख्यसाधनं ज्ञानमेव यथा 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:'। ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

भाषा–मोक्षके जप, तप, ध्यान इत्यादि जितने साधन शास्त्रों में वर्णित हैं, उनमें मोक्षका मुख्य साधन आत्मज्ञान ही है । जैसे पाक बनानेमें घड़ा लकड़ी प्रभृति भी कारण हैं। परन्तु वे सब सहकारि साधन हैं। मुख्य कारण अग्नि ही है। उसी प्रकार बिना ज्ञानके, जप, तप, ध्यान भी सम्भव नहीं है।

अवतरण–जो जिसका विरोधी होता है वही उसका निवर्तक भी होता है। अत: श्रेष्ठ कर्म विरोधी न होने से अज्ञान का निवर्तक नहीं है।

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत् ।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ३

अन्वय:–कर्म श्रेष्ठकर्म अविद्यां अज्ञानं अविरोधितया न विनिवर्तयेत् दूरीकर्तुं न समर्थं भवेत् । यथा तेजस्तिमिरनाशने समर्थं तथा विद्या अविद्यां अज्ञानं निहन्त्येव नाशयत्येव । अविद्या यथा–अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वे स्वमिति या मति: । अविद्या तरुसंभूतिबीजमेतद्द्विधास्थितम् ॥

भाषा—कर्म एवं अविद्या एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं विरोधी जैसे अन्धकार का प्रकाश, शीत का उष्ण, अज्ञान का ज्ञान आदि। इससे कर्म अविद्या को दूर नहीं कर सकता बल्कि विद्या और अविद्या एक दूसरे के विरोधी हैं। अतः जैसे प्रकाश अन्धकार को नष्ट करदेता है, उसी तरह विद्या, ज्ञान, अविद्या, अज्ञान का नाश करती ही है। रज्जू में सर्प का जो अज्ञान है उसको नष्ट करता है।

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेऽशुमानिव ४

अन्वयः—मेघापाये मेघनाशे स्वच्छे व्योम्नि अंशुमान् इव सूर्य इव आत्मा अज्ञानात् परिच्छिन्न इव आवृत इव तन्नाशे अज्ञाननाशे सति केवलः अज्ञान रहितः अद्वितीय स्वयं प्रकाशते प्रतीतो भवति।

भाषा—सूर्य प्रकाशस्वरूप होते हुए भी जिस प्रकार बादलों से ढक जाने के कारण प्रतीत नहीं होता हैं, ठीक उसी प्रकार यह आत्मा जब तक अज्ञान से घिरा रहता है तब तक आत्मत्व का बोध नहीं होता, जब अविद्या का नाश हो जाता है तब स्वयं प्रकाशवान ब्रह्मरूप दृष्टिगोचर होने लगता है।

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानम् नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥५॥

अन्वयः—कतकरेणुवत् जलं निर्मलं कृत्वा स्वयं नश्येत् कतकरेणुः यथा जलं विमलं कृत्वा स्वयमपि तत्रैव तिरोभवति तथैव ज्ञानाऽभ्यासात् अहमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेत्यभ्यासात् अज्ञान

कलुषं अहं भोक्तेत्यादि मन्यमानं जीवं जीवात्मानं निर्मलं कृत्वा स्वयं नश्येत्।

भाषाः—जैसे निर्मली मैले पानी को स्वच्छ करके स्वयं भी नष्ट होजाती है, वैसेही ज्ञान के अभ्यास से अर्थात् केवल एक ब्रह्म ही है, उसके अतिरिक्त और जो कुछ है प्रपञ्च है, नाशवान है, माया है इस प्रकार का ज्ञान का अभ्यास अज्ञान से मलिन जीव को जैसा "भूमि परत भा डाबर पानी, जिमि जीवहिं माया लपटानी।" अर्थात् मैं ही करनेवाला हूँ, मैं ही भोक्ता हूं. इस प्रकार अज्ञानावृत जीवात्मा को निर्मल करके आप भी नष्ट हो जाता है।

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः। तुल्यकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ६

अन्वयः—रागद्वेषादिसंकुलः रागद्वेषादिव्याप्तः संसारः संसरन्ति जीवाः अस्मिन् इति, स्वप्नतुल्यः हि यतः स्वकाले स्वप्न समये सत्यवद्भाति यथार्थं पदार्थमिति भासते। प्रबोधे निद्राऽपगमे असत्यवद्भवेत्।

भाषा—रागद्वेषादि से भरा हुआ यह संसार स्वप्न के तुल्य है। क्योंकि स्वप्न के समय की दशा स्वप्न समय ही में सत्य के तुल्य दीख पड़ती है। चैतन्य होने पर सब मिथ्या हो जाती है। इसी प्रकार जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ है तब तक संसार स्वप्न के तुल्य सत्य प्रतीत होता है, आत्मा और ब्रह्म की एकता का जब ज्ञान हो जाता है तब जगत् मिथ्या प्रतीत होने लगता है।

अवतरण—यह संसार जब वस्तुतः मिथ्या है तब असत्य सत्य के समान कैसे कबतक भासता है। इसी को स्पष्ट करते हैं।

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥७॥

अन्वयः—यथा यावत् न ज्ञायते शुक्तिका रजतम् तावदेव तथा सत्यं भाति । तथैव यावत् सर्वाधिष्ठानं अद्वयं ब्रह्म न ज्ञायते तावदेव जगत् सत्यं भाति ।

भाषा—जैसे सीप में चाँदी का जब तक भ्रम है कि—यह सीप है अथवा चाँदी तभी तक सीप भी चाँदी प्रतीत होता है । उसी प्रकार जब तक सर्वाधिष्ठान ब्रह्मका अद्वैत ज्ञान नहीं हुआ है, तब तक जगत् सत्य प्रतीत होता है, पीछे ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर झूठा प्रतीत होने लगता है ।

अवतरण—यह सब जगत् ब्रह्म में कैसे किस प्रकार झूठा है—इसी को स्पष्ट करते हैं ।

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ।८॥

अन्वयः—सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ सर्वाः विविधाः व्यक्तयः प्रकल्पिताः हाटके कटकादिवत् ।

भाषा—सत्, चित्, आनन्द आत्मा, जिस प्रकार सुवर्ण में कटक कुण्डलादि भूषण कल्पित हैं, यानी कटक कुण्डलादि अनेक भूषणों के टूटने पर सुवर्ण ही रहता है, पहले का न तो नाम ही रहता है और न रूपही, उसी प्रकार नित्य जिसका कभी नाश नहीं होता और जोसबमें व्यापक हैं उस सच्चिदानन्द आत्मा में अनेक व्यक्तियाँ कीट पतङ्गादि कल्पित हैं । व्यक्तियों में आत्मा है, एवं

आत्मा में व्यक्तियाँ है। मनुष्य, कीट आदि नाम और तत्तत् रूप के न रहने पर आत्मा ही आत्मा रहता है।

अवतरण—ब्रह्म नामरूप उपाधि भेद से भिन्न होने पर भी उपाधि के न रहने पर केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है इसी को स्पष्ट करते हैं—

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ९

अन्वयः—नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः आत्मनि आरोपिताः सन्ति तोये रसवर्णादिभेदवत्।

भाषा—विविध प्रकार की उपाधियों के कारण जाति, नाम, आश्रम आदि आत्मा में आरोपित हैं, जैसे जल में कड़ुआ, मीठा, तीता का मिश्रण कर देने से जलका वैसा ही स्वाद तथा नील, पीत रङ्ग मिला देने से नील, पीत रङ्ग भी मालूम पड़ने लगता है, परन्तु वस्तुतः जल में न वह रङ्ग ही है न वह स्वाद ही है इसी प्रकार सब उपाधियाँ आत्मा में कल्पित हैं। वास्तवमें जैसे जल शुद्ध और स्वच्छ है, उसी प्रकार आत्मा भी शुद्ध और स्वच्छ है।

पंचीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितम्।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते॥१०॥

अन्वयः—पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितं शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते।

भाषा—पंचीकरण किए गए जो पृथ्वी आदि पंच भूत उनसे

उत्पन्न हुआ और प्रारब्धके कर्मों से बना हुआ जो शरीर है वह सुख दुःख भोगने का स्थान है।

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थंसूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ११

अन्वयः श्लोकाऽनुरूपम् ।

भाषा—पञ्च प्राण मन, बुद्धि, और दश इन्द्रियाँ सब सत्रह अंगोंसे युक्त अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों से सुशोभित सूक्ष्म शरीर भोग का स्थान है ।

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥१२

अन्वयः–अनाद्य विद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिः उच्यते आत्मानं उपाधित्रितयात् अन्य अवधारयेत् ।

भाषा—अनादि औरअनिर्वाच्या जो अविद्या वही कारणो पाधि है। परन्तु आत्माको तीनों उपाधियों से भिन्न मानना चाहिए। तीन उपाधियाँ, स्थूल, सूक्ष्म-कारण।

अवतरण—यह आत्मा जब पंच कोशादिकों के योग से पंचकोशमय है,तब उपाधियों से भिन्न कैसे कहा इसीको स्पष्ट करते हैं।

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा १३

१ प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। पाँच ज्ञानेन्द्रिय-आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ।पाँच कर्मेन्द्रिय गुदा, लिंग, हस्त, पाद, मुख ।

अन्वयः—यथा स्फटिकः नीलवस्त्रादियोगेन तत्तन्मय इव भांति तथा शुद्धात्मा पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।

भाषा—जिस प्रकार स्फटिक नीले पीले वस्त्रोंके मिश्रणसे नीले पीले रङ्गका दीख पड़ता है किंतु वस्तुतः है सफेद। इसी तरह से आत्मा भी पवित्र है, परन्तु पंच कोशादिकों के योगसे पञ्च-कोशमय प्रतीत होता है।

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्याऽवघाततः।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा १४

अन्वयः—यथा तुषादिभियुक्तं तण्डुलं वपुः अवघातः तथा युक्त्या कोशैः युक्तं आत्मानम् अनन्तरम् शुद्धं विविच्यात्।

भाषा—जिस प्रकार कूट कर धानके छिलकोंके छील देने पर चावल प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार युक्तिसे अवघात द्वारा पंचकोश रूप छिलकोंसे ढकी हुई आत्माको अलग कर शुद्ध आत्मा की विवेचना करनी चाहिए।

अवतरण—आत्मा जब व्यापक है तो क्यों नहीं प्रतीत होता है इसी को स्पष्ट करते हैं।

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्राऽवभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत्॥
यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः १५

१-पंचकोश—अन्नमय कोश, प्राण मय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश।

अन्वयः—यथा आकाशः विभुः नानोपाधिगतः तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः तथा हृषीकेशः।

भा.।—जिस प्रकार आकाश व्यापक है परन्तु घट, मठ, कलश, विविध उपाधियों में प्राप्त होने से घटाकाश, मठाकाश इत्यादि उपाधिभेद से भिन्न २ दृष्टिगोचर होता है, और घटादिकों के नाश हो जाने पर केवल आकाश ही रह जाता है, उसी प्रकार हृषीकेश सम्पूर्ण इन्द्रियों का परमात्मा देहादि उपाधियों में प्राप्त हो जाने से भिन्न २ प्रतीत होता है, किंतु उसके नाश हो जाने के पश्चात् केवल ब्रह्म ही रह जाता है।

अवतरण—यह आत्मा जाति, नाम, आश्रम आदि उपाधियों से युक्त प्रतीत होता है यह असंग कैसे है इसीको स्पष्ट करते हैं।

आत्मा सदा सर्वतोऽपि सर्वत्र नाऽवभासते
स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् बुद्धावेवावभासते १६

भाषा–आत्मा सर्वथा सब जगह व्याप्त है परन्तु उसका अवभास सब जगह नहीं होता केवल बुद्धि में ही होता है। जैसे मुह का प्रतिबिम्ब लकड़ीमें अथवा मट्टीमें नहीं होता, दर्पणही में होता है

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा १७

अन्वयः—राजवत् आत्मानं सदा देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणं तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यात्।

भाषा—जैसे सभामें बैठा हुआ राजा सबका साक्षी है, प्रेरक है परन्तु सबसे पृथक है, उसी तरह आत्मा भी देह, इन्द्रिय, मन

बुद्धि, प्रकृति इनसे विलक्षण और इन्द्रियादिकों की वृत्तियों का यानी दर्शन स्पर्शन आदिका साक्षी जानना चाहिए।

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाऽविवेकिनां
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी १८

अन्वय—यथाऽभ्रेषु धावत्सु शशी धावन् इव दृश्यते तथैव इन्द्रियेषु व्यापृतेषु अविवेकिनाम् आत्मा व्यापारी इव दृश्यते।

भाषा—जैसे आकाश में मेघ के दौड़ने से चन्द्रमा दौड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है किंतु दौड़ता नहीं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषों की आत्मा इन्द्रियां व्यवहार करती हैं तब व्यवहारी ऐसा देख पड़ता है, किंतु आत्मा में कोई भी व्यापार नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमा के दौड़ने में भ्रम है उसी प्रकार भ्रम है।

आत्मा चैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वकीयार्थेषु वर्तंते सूर्यलोकं यथा जनाः १९

अन्वय—यथा जनाः सूर्यालोकम् आश्रित्य स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते। तथैव देहेन्द्रियमनोधियः आश्रित्य स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते।

भाषा—जैसे सब लोग सूर्य के निकलने पर उसी के सहारे अपने कार्य करते हैं वैसे आत्मा के ही चैतन्य के सहारे से देह, इन्द्रिय, मन बुद्धि, अपने अर्थ में प्रवृत्त होते हैं। अतः देह, इन्द्रिय आदि स्वतः चेतन नहीं हैं। बल्कि आत्मा की चेतनता उनमें जान पड़ती है। स्वय चैतन्य नहीं होने से वे आत्मा के समान नहीं हो सकते हैं।

देहेन्द्रियगुणान् कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् २०

अन्वयः—देहेन्द्रियगुणान् कर्माणि च अमले सच्चिदात्मनि अविवेकेन गगने नीलिमादिवत् अध्यस्यन्ति ।

भाषा—जिसप्रकार अज्ञान वश आकाश में नील, पीत, रंगों को मानते हैं। यह मानना केवल भ्रम मात्र है उसमें वैसा रंग नहीं है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा में देह एवं इन्द्रियोंके जो गुण और कर्म हैं जैसे सुनना, देखना, बोलना, चलना, जन्म लेना, मरना, इत्यादि अन्धापन, बहिरापन, आदि इनको अज्ञानी लोग भ्रम वश आरोप कर लेते हैं, किंतु आत्मा में जन्म, मरण, इत्यादि कोई भी धर्म नहीं है ।

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथा भ्रमः २१

अन्वयः—यथा अम्भसः चलनादिः भ्रमः अम्बुगते चन्द्रे कल्प्यन्ते तथैव अज्ञानात् मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि आत्मनि कल्प्यन्ते ।

भाषा—अज्ञानी लोग अज्ञानवश जिसप्रकार जलके हिलने, चलने से चलना धर्म को जलके बीच पड़ी हुई चन्द्रमा की परछाईं में मान लेते हैं कि जल नहीं चलता हिलता है, बल्कि चन्द्र-बिम्बही चलता है । उसी प्रकार अज्ञान से मनकी कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि उपाधियों को मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ, पुण्यवान हूं, मैं पापी हूं, आदि प्रतीत होने से आत्मा कर्ता भोक्ता प्रतीत होता है यह झूंठ है। क्योंकि कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अन्तः

करण के धर्म हैं वे अंतःकरण और आत्मा की एकरूपतासे आत्मा में प्रतीत होते हैं। किंतु हैं नहीं।

रागेच्छा सुखदुःखादिबुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्तितन्नाशेतस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः २२

अन्वय---रागेच्छा सुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते सुषुप्तौ तन्नाशे नास्ति तस्मात् बुद्धेः अस्ति आत्मन ।

भाषा—राग, इच्छा, सुख एवं दुःख,-राग किसी को देख कर रुष्ट हो जाना, किसी वस्तु की मिलने न मिलने की इच्छा, तथा मनोऽनुकूल सुख और प्रतिकूल दुःख आदि सम्पूर्ण धर्म जागृत अवस्था में बुद्धि के रहते हुए होते हैं, सुषुप्ति अवस्था में अपने कारण रूप अज्ञानमें बुद्धि के विलीन हो जानेसे कोई भी धर्म में संलग्न नहीं होता है। इस कारण अन्वय व्यतिरेकसे पानी 'तद्भावे ऽभावः तत्सत्वे तत्सत्वम्' अर्थात् बुद्धिके रहनेपर रागादिका होना, अन्वय बुद्धि के लय होजाने पर रागादिकों का न होना व्यतिरेक से राग द्वेष आदि सब धर्म बुद्धि के ही हैं आत्माके नहीं हैं

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलताऽऽत्मनः २३

अन्वय—यथा अर्कस्य स्वभावः प्रकाशः, तोयस्य शैत्यं, अग्नेः उष्णता तथैव आत्मनः स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलता।

भाषा—जैसे सूर्य का प्रकाश स्वभाव है जल का शीतस्वभाव है अग्निका उष्ण स्वभाव है, इसी प्रकार आत्माका, सत् चित् आनन्द नित्य स्वच्छ स्वभाव है।

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते २४

अन्वय—आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेः वृत्ति इति द्वयम् संयोज्य जानामि इति अविवेकेन प्रवर्तते ।

भाषा—आत्माका सत्-चित्-अंश बुद्धिकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित होता है एवं अज्ञान रूप आनन्दको अंश जो बुद्धि की वृत्ति है इन दोनोंको अविवेकसे मिश्रण करके मैं जानता हूँ, सुखीहूँ दुःखी हूँ, इन सब व्यवहारों में जीव प्रवृत्त होता है यथार्थ में आत्मा किसीका साथी नहीं फिर ऐसे आत्मामें सुख दुःख नहीं हो सकते। क्योंकि ज्ञान भी बुद्धिका फल है और सुखाकार वृत्ति भी। आत्मा में जो इनकी प्रतीति है वह बुद्धि और आत्मा की एकता के भ्रम से है। इससे आत्मा निर्विकार सच्चिदानन्द रूप है।

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति २५

अन्वय—आत्मनः विक्रिया नास्ति बुद्धेः जातु बोधः न जीव सर्वमलं ज्ञात्वा कर्त्ता द्रष्टा इति मुह्यति ।

भाषा—आत्माका विकार नहीं यानी आत्मा विकार विहीन है। निर्गुण है क्रिया विहीन है, कभी भी बुद्धिमें ज्ञान नहीं होनेका कारण यह है कि बुद्धि मायाका कार्य होने से जड़ है फिर भी अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चेतनकी चेतना से देह इन्द्रिय इत्यादि जड़ पदार्थ चेतनरूप दिखाई देते हैं। इससे आत्मा के एवं अन्तःकरणके अभेद ज्ञानसे बुद्धिके कर्त्ता, भोक्ता यह सब धर्म

भ्रम से आत्मामें दिखाई देते हैं। इससे जीव सबको अपने में जान-कर मैं कर्त्ता हूं, मैं द्रष्टा हूं, इस प्रकार माया में पड़ा है।

रज्जुः सर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्।
नाऽहं जीवःपरात्मेति ज्ञात चेन्निर्भयो भवेत् २६

अन्वय—यथा पुरुषः रज्जुःसर्पवत् भयं वहेत तथैव पुरुषः आत्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् अहं जीवः न परात्मा इति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्।

भाषा—जिस प्रकार लोग रस्सी को भ्रम से सांप जान कर भय-भीत होकर दुखी होते हैं उसी प्रकार भ्रम वश आत्मा को जीव मान कर दुःखी है। मैं जीव नहीं हूं किंतु परमात्मा हूं ऐसा ज्ञान होने से निर्भय हो जाता है, क्योंकि सब दुःखों का कारण भ्रम है।

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनिन्द्रियाणिच।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते २७

अन्वय—इन्द्रियाणि बुद्ध्यादीनि च एकः आत्मा दीपः घटादि-वत् अवभासयति जडैः तैः स्वात्मा न अवभास्यते।

भाषा—जिस प्रकार दीपक घटादिकों को प्रकाशित करता है उसी तरह एकही आत्मा सब इन्द्रियों को और बुद्ध्यादिकों को प्रकाशित करता है। जड़ इन्द्रियादिकों से आत्मा प्रकाशित नहीं होता। जैसे ईंट-पत्थर दीपक को प्रकाशित नहीं कर सकते इसी कारण आत्मा चैतन्य है, मन बुद्धि आदि को जानता है। मन बुद्धि आदि जो जड़ हैं आत्मा को नहीं जानते हैं।

व
७२६

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतया ऽऽत्मनः।
न दीपस्या ऽन्य दीपेच्छायथा स्वात्माप्रकाशते २८

अन्वय—यथा दीपस्य अन्य दीपेच्छा न तथा आत्मनः बोधरूपतया स्वतो बोधे अन्य बोधेच्छा न यतः स्वात्मा स्वयं प्रकाशते।

भाषा—जिस प्रकार दीपक को प्रकाशमान होने के लिए दूसरे दीपक की अपेक्षा नहीं होती है। उसी प्रकार आत्माको बोधरूप होने के कारण दूसरे के बोध की अपेक्षा नहीं होती। क्योंकि आत्मा तो स्वयं प्रकाशमान है।

अवतरण—आत्मा स्वय मुक्त होता हुआभी उसके मुक्ति केलिये श्रवण, मनन आदिकी आवश्यकता पड़ती है इसीकोस्पष्ट करते हैं।

निषिध्य निखिलोंपाधीन्नेतिं नेतीति वाक्यतः।
विधादैक्यं महावाक्यै जीवात्मपरमातमनोंः २९

अन्वय—नेति नेति इति वाक्यतः निखिलोपाधीन् निषिध्य महावाक्यः जीवात्मपरमात्मनोः ऐक्यं विद्यात्।

भाषा—नेति नेति इस वाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियोंका निषेध करके तत्वमसि आदि महावाक्यों से जीव व परमात्मा की एकता को जाने व आत्मा से भिन्न का त्याग करे अर्थात् आत्मा से भिन्न को जड़ और अनित्य समझे। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म, और कार्य कारण रूप नामरूपात्मक जगत् को अनित्य जानने के बाद इन महावाक्यों से जीव और परमात्मा की एकता को जाने। उस एकता रूपी बोध को ही मुक्ति का कारण बताते हैं। "वह ब्रह्म तू है" यह जीवात्मा ब्रह्म है, प्रज्ञान ब्रह्म है, मैंब्रह्म हूँ। और महा—

वाक्यों से एकता के बोध का प्रकार यह है कि, दोनों पद जहां वाच्य वाचक भाव से अर्थ में आते हैं उसको सामानाधिकरण्य कहते हैं। और वाक्य उसको कहते हैं जिसके शब्द का उच्चारण करतेही ज्ञान यानी देवदत्त के उच्चारण करते ही देवदत्त का, और वाचक उसको कहते हैं जिसके उच्चारणसे पदार्थ जाना जाय जैसे देवदत्त शब्द अर्थात् देवदत्त शब्द और उसका वाच्य वाचक भाव आदि सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है— सामानाधिकरण्य, विशेषण विशेष्यभाव, लक्ष्य लक्षण भाव, उसमें सामानाधिकरण्य,मुख्य सामानाधिकरण्य और बाधसामाधिकरण्य भेदसे दो प्रकारका है। जिस वस्तुका जिस वस्तु के साथ सदैव अभेद हो वह मुख्य सामानाधिकरण्य है, जैसे लोहे का टुकड़े का लोहा और हथियारका टूटा हुआ लोहा। और जहा किसी अंशको बाधकर अभेदहो वह बाधसामानाधिकरण्य है, जैसेहथियार के नामरूपको बाधकर दोनों पूर्वोक्त लोहे में अभेद है। अथवा जहां दो पदोंका परस्पर भेदहो और अर्थ एक हो वह बाधसामानाधिकरण्य होता है। जैसे घट, कलश यहां शब्द भेद होनेपर भी मृत्तिकारूप लक्ष्य एक है। अथवा सोऽयं देवदत्तः इस वाक्य मे सः अयं देवदत्तः यह तीन पद हैं। इसमें सः पद उस परोक्ष काल में दृष्टका बोधक है और अयं यह पद वर्तमान काल वृत्तिका परिचायक है। ऐसे दोनों पदों का भिन्न २ अर्थ है। परंतु दोनों पदोंका अर्थ देवदत्त में है। इससे देशकाल रूप विशेषण के परित्याग से देवदत्त रूप पिंडमात्र का ज्ञान होता है। इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में परोक्ष आदि विशेषण

विशिष्ट चेतन तत्पद का वाच्य अर्थ है। और अपरोक्ष आदि विशेष विशिष्ट चेतन त्वं पद का वाच्य अर्थ है। इन दोनों पदों का अर्थ भिन्न २ है और और तात्पर्य शुद्ध चेतन के विषय में है। इससे परोक्ष अपरोक्ष आदि विशे.णों के त्याग से चेतन रूप अर्थ में दोनों का सामानाधिकरण्य है। यह सामानाधिकरण्य प्रथम है। और इसका विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध यह है कि जैसे सोऽयं देवदत्तः यहां सः अयं ये पद हैं। देवदत्त पद के विशेषण हैं और देवदत्त विशेष्य है और ये दोनों अपने अपने देशकाल रूप अर्थ को छोड़कर देवदत्त के स्वरूप जो बोधन करते हैं। इसी तरह तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में भी तत्पदका अर्थ परोक्ष आदि विशेषण सहित चेतन है विशेषणों को छोड़ कर दोनों का असि इस पद में सामानाधिकरण्य हैं। तीसरा सम्बन्ध लक्ष्य लक्षण भाव है जैसे सोऽयं देवदत्त यहां सः अयं इन दो पदों से देशकाल आदि विशेषणों को छोड़कर देवदत्त मात्रका ज्ञान होता है। इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में भी तत्पद का अर्थ अद्वितीय–परोक्ष व्यापक चेतन है और त्वं पद का अर्थ सद्वितीय-अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन है। इन विरुद्ध धर्मों को त्याग कर एक चेतन जो विरुद्ध धर्म रहित लक्ष्य अर्थ हैं उसका ज्ञान होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त तीनों सम्बन्धों से लक्षण के द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। और यह लक्षण जहत्-अजहत् जहदजहद् भेद से तीन प्रकार की है जैसे गङ्गा में घोष अर्थात् अहीरों का गांव यहाँ गङ्गा में गांव का होना असम्भव है इसलिये गङ्गापद का अपने प्रवाह रूप अर्थ को छोड़–

कर तीर में लक्षणा होती है, क्योंकि जहाँ पद अपने संपूर्ण अर्थ को छोड़दे, वह जहत् लक्षणा है और महावाक्यों में चेतन रूप अर्थ दोनों का एक है। इससे अर्थ का त्याग न होने से जहत् लक्षणा नहीं हो सकती है "अरुणः धावति" यहाँ लाल रंग में दौड़ना असम्भव है इससे अरुण पद की लाल घोड़े में लक्षणा है यहाँ अरुण पद की अपने लाल रूप अर्थ को न छोड़ कर लाल घोड़े में अजहद् लक्षणा होती है क्योंकि जहां अपने अर्थ को न छोड़कर पद दूसरे अर्थ को कहे वहाँ अजहत् लक्षणा होती है। यह लक्षणा भी महावाक्यों में नहीं हो सकती है क्योंकि उनमें संपूर्ण वाच्य अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकता और जहाँ थोड़े अर्थ का त्याग और थोड़े अर्थ का ग्रहण होता है वह जहद जहद् लक्षणा समझी जाती है। यही लक्षणा महावाक्यों में इस प्रकार घटती है। जैसे सोऽयं देवदत्तः इस वाक्य में देश काल और पुष्ट कृशका त्याग है पिंड मात्र देवदत्त का ग्रहण है ऐसे ही तत्त्व मसि आदि महावाक्यों में समष्टि, व्यष्टि, स्थूल सूक्ष्म आदि विरुद्ध अंश को त्याग कर व्यापक अखंड चैतन्य मात्र का जहद जहद् लक्षणा से बोध होता है इसी को भाग त्याग लक्षणा भी कहते हैं।

आविद्यिकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम्।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ३०

अन्वय—आविद्यिकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षरं ज्ञेयं एतद्विलक्षणं निर्मलं अहं ब्रह्मेति विद्यात्।

भाषा—अविद्या से कल्पित जो शरीर आदि जड़ दीखते हैं

उनको पानी के बुद्बुदे के सदृश नाशवान् जानना चाहिये इनसे विलक्षण निर्मल [विकार रहित जो ब्रह्म है, वहीं मैं हूं ऐसा समझना चाहिये।

देहान्यत्वान्न मे जन्म जराकार्श्यलयादयः।
शब्दादिविषयैः संगो निरिन्द्रियतया न च ३१

अन्वय—देहान्यत्वात् मे जन्म जराकार्श्यलयादयः न निरिन्द्रियता च शब्दादि विषयैः सङ्गः न।

अवतरण—यहाँ जीव ब्रह्म की एकता को किस प्रकार मनन करना चाहिये उसी को बताते हैं।

भाषा—स्थूल और सूक्ष्म शरीर से मैं अलग हूँ। इस लिए मेरा जन्म बुढ़ापा, मरण आदि नहीं है। अर्थात् मुझे भूख प्यास आदि भी जो देह के धर्म हैं वे भी नहीं हैं क्योंकि मैं आनन्दरूप हूँ। मैं इन्द्रियों से रहित हूँ, इसलिये शब्दस्पर्श आदि गुणों से मेरा सग नहीं है मैं निर्मल ब्रह्म हूँ। आप सा जानना चाहिये।

अमनस्त्वान्न मे दुःख रागद्वेषभयादयः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुतिशासनात् ३२

अन्वय—अमनस्त्वान् दुःखरागद्वेषभयादयः अप्राणः श्रुतिशासनात् शुभ्रः।

भाषा—मैं तनसे प्रथक् हूँ। इस कारण, मुझ में दुःख राग द्वेष भय आदि मनके कोई भी धर्म नहीं हैं और प्राणों से भिन्न इसलिये प्राण के धर्म भी भूख प्यास आदि हममें नहीं हैं।

श्रुतियों के कथनानुसार परमात्मा प्राणसे भिन्न है और मनसे भी स्वच्छ यानी अविद्याके मलसे रहित है, सच्चिदानन्द निर्विकार है।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्यधारिणी ३

अन्वय--प्राणः मनः सर्वेन्द्रियाणि खं वायुः ज्योतिः आ विश्वस्य धारिणी पृथ्वी च एतस्मात ब्रह्मणः जायते।

भाषा—प्राण मन सब इन्द्रियाँ आकाश वायु ज्योतिजल संसार को धारण करने वाली पृथ्वी ये सब उसी ब्रह्मसे उत्पन्न होते हैं।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ३

अन्वय--अहं निर्गुणः निष्क्रियः नित्यः निर्विकल्पः निरंजनः निर्विकारः नित्यमुक्तः निर्मलः अस्मि।

भाषा—मैं गुणों से रहित हूँ अर्थात् मायाके जो जो रागद्वेष आदिक गुण हैं वे मुझमें नहीं है मैं निष्क्रिय हूँ। यानी हममें किसी प्रकारकी क्रियायें माया से नहीं हैं। मैं नित्य हूँ। मेरा कभी भी नाश नहीं होता, निर्विकल्प हूँ। यानी हम में किसी प्रकार संकल्प में विकल्प नहीं है। निरंजन यानी माया का अंजन है वह मुझ में नहीं है। निर्विकार हूँ यानी विकार से रहित हूँ। निराकार हूँ यानी मेरा कोई आकार नहीं है। नित्य मुक्त हूँ यानी मोह आदि बन्धनों से छूटा हुआ हूँ। निर्मल हूँ यानी किसी प्रकार का मल मुझ में नहीं हैं।

अहमाकाशवत्सर्वं बहिरन्तर्गतोऽच्युतः ।
सदा सर्वसमःशुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः ३५

अन्वय--अहं सदा आकाशवत् सर्वं बहिरंतर्गतः सदा सर्व समः अच्युतः शुद्धः निःसंगः निर्मलः अचलः अस्मि ।

भाषा—मैं सब काल में आकाश के समान सबके यानी जड़ दृश्य पदार्थों के भीतर व्यापक हूँ और सबसे भिन्न अर्थात् किसी में नहीं हूँ । यदि ऐसा है तो सबके नाश हो जाने पर आत्मा भी नष्ट हो जानी चाहिए, ऐसा नहीं होता क्योंकि मैं अच्युत हूँ । यानी मैं कभी च्युत नहीं होता मैं कभीनष्टनहीं होता हूं क्योंकि मैं अधिष्ठान रूप हूँ ।

नित्य शुद्ध विमुक्तैकमखंडानन्दमद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं ब्रह्माहमेवतत् ३६

अन्वय--यत् नित्यशुद्धविमुक्तकम् अखण्डानंदनम् अद्वयम् सत्यं ज्ञानम् अनंतम् परंब्रह्म तत् अहमेव ।

भाषा—मैं नित्य यानी सब समय में बाध रहित हूँ जैसा कि नित्योनित्यानां चेतनं चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्) । इत्युपनिषत् । शुद्ध यानी—अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि से रहित होने के कारण शुद्ध ज्ञान स्वरूप (केवल ज्ञान मात्र) विमुक्त-यानी बन्धन रहित, एक यानी सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित अखण्ड यानी त्रिविध[1] परिच्छेद रहित । आनन्द यानी—सुख स्वरूप । अद्वय यानी एक

[1] देश, काल, वस्तु, स्वरूप ।

पदार्थ, इस प्रकार जो सत्य अर्थात सर्वदा भासमान ज्ञान, अर्थात बोध स्वरूप अनन्त अर्थात व्यापक इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा को सोचे।

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्या विक्षेपान्रोगानिव रसायनम् ३७

अन्वय—अहम् ब्रह्म एवास्मि एवम् निरंतराभ्यस्ता वासना अविद्या विक्षेपान् हरति रसायनम् रोगानिव।

भाषा—पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर अभ्यास की हुई "मैं, ब्रह्म हूँ" यह वासना अविद्या विक्षेप आदि को रोगों को रसायन की तरह नाश कर देती है।

विविक्त देश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥३८॥

अन्वय—विरागः विजितेंद्रियः अनन्यधीः विविक्त देशे आसीना तं अनंतं एकं आत्मानं भावयेत्।

भाषा—एकांतस्थान में बैठा हुआ वैराग्य युक्त जितेन्द्रिय अनन्यधी यानी आत्मेतर सकल पदार्थ ज्ञान से रहित साधक पुरुष केवल उस (पूर्वोक्त) विभु आत्मा का चिंतन करे।

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत सदा॥३९॥

अन्वय—सुधीः अखिलं दृश्यं धिया आत्मनि एवं प्रविलाप्य सदा आत्मानं एवम् निर्मलाकाशवत् भावयेत्।

व
१२६

भाषा—श्रुति स्मृति विहित वर्णाश्रम धर्मके अनुष्ठान से जिसकी बुद्धि निर्मल हो गई वही साधक अपने आत्मा में ही सम्पूर्ण विश्वरूप प्रपंच को ज्ञान से विलीन कर आकाशवत् सर्वव्यापी और निर्मल केवल आत्मा का ही चिंतन करे। भावना का स्वरूप इस प्रकार है जैसे कि वृष्टि होने पर पृथ्वी से अनन्त घासें उत्पन्न होकर ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से भस्म होकर बीज सहित फिर पृथ्वी में विलीन हो जाती हैं उस समय पृथिवी मात्र ही दृष्टिगोचर होती हैं। इसी प्रकार व्यापक आत्मासे उत्पन्न यह दृश्य [संसार] अपने अपने कारण में छिप जाता है उस समय केवल आत्मा ही साधक की ज्ञान दृष्टि में रह जाता है, उसी आत्मा की भावना [चिंतन] करे।

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित्।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥४०॥

अन्वय—परमार्थवित् नामवर्णादिकम् सर्वं विहाय परिपूर्ण-चिदानंदस्वरूपेण अवतिष्ठते।

भाषा—परम अर्थ अर्थात [मोक्ष] को जानने वाला साधक नाम अर्थात विविध [संज्ञा] यानी ब्राह्मण क्षत्रियादिक सबको त्यागकर परिपूर्ण यानी व्यापक सर्वत्र विद्यमान सब जानने वाला चिदानन्द स्वरूप बनकर रहता है। अर्थात अब की समाधि जब साधक को होती हैं तब न तो कोई जाति न कोई नाम रहता है। अपरिच्छिन्न आत्मज्ञानका अनुभव करता है।

ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय भेदः परात्मनि न विद्यते।

चिदानंदैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ४१

अन्वय—परात्मनि ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय भेदः न विद्यते हि परात्मा चिदानंदै करूपत्वात् स्वयमेव दीप्यते ।

भाषा—समाधि दो तरहकी होती हैं, सविकल्प और निर्विकल्प, सविकल्प समाधि मे यद्यपि ज्ञाता ज्ञेय का ज्ञान रहता है, किंतु निर्विकल्प समाधि में परमात्मा के सिवाय उसमें ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान का प्रतीक नहीं होता क्योंकि चिदानन्द स्वरूप होने से वह स्वयमेव प्रकाशमान होता है ।

एवमात्मारणौ ध्यानमथनेसततं कृते ।
उदितावगतिज्वाला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ४२

अन्वय—एवं आत्मा अरणौ सततं ध्यानमथने कृते उदिता अवगति ज्वाला सर्वाऽज्ञानेंधन दहेत् ।

भाषा—इस तरह आत्मा रूपी अरणी (यज्ञमें आग निकालनेकी एक लकड़ी होती है जिसको मथनकर आग निकालते हैं) के सर्वथा ध्यान रूप के मथन होने पर निकली हुई अग्नि सब अज्ञान रूपी ईंधन को जला कर भस्म कर देती है ।

अरुणेनेवबोधेन पूर्वं सन्तमसे हृते ।
तत आविर्भवेदात्मास्वयमेवांशुमानिव ४३

अन्वय—पूर्वं संतमसे हृते अरुणेन इव स्वयमेव बोधेन आत्मा अंशुमानिव आविर्भवेत् ।

भाषा—सूर्य जैसे अपने उदय के पहिले अपने अरुण [लाल] किरणों से अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार

सूर्य की तरह आत्मा भी पहिले अपने ज्ञान रश्मि से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर फिर प्रकाशित होता है।

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्यवदविद्यया।
तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा ४४

अन्वय—आत्मा सततं प्राप्तः अपि तु अविद्यया अप्राप्यवत् भाति तन्नाशे यथा स्वकण्ठाभरणम्।

भाषा—आत्मा तो ज्ञान के द्वारा निरन्तर प्राप्त है लेकिन अज्ञान के कारण अप्राप्त के बराबर है। यानी ज्ञात होता है कि नहीं प्राप्त हैं। किंतु अज्ञान के नष्ट हो जाने पर प्राप्त के समान ऐसा मालूम होता है कि कोई अपने गले की माला को भ्रम में पड़ कर भूल गया हो फिर भ्रम के नाश हो जाने पर मिल गया ऐसा कहने लगता है।

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता।
जीवस्य तात्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ४५

अन्वय—भ्रांत्या स्थाणौ पुरुषवत् जीवताकृता ब्रह्मणि जीवता तस्मिन् तात्विके रूपे दृष्टे निवर्तते।

भाषा--भ्रमवश वृक्ष के खुत्थे में आदमी है ऐसा कहकर गौर से देखकर खुत्था है ऐसा कहता है उसी प्रकार ब्रह्म में "जीव" का भी भाव जान पड़ता है परन्तु जीव का सत्यरूप है उसका ज्ञान होने पर जीव का भाव दूर हो जाता है।

तत्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमंजसा ।

अहं ममेति चाज्ञा बाधते दिग्भ्रमादिवत् ४६

अन्वय—तत्वस्वरूपाऽनुभवात् उत्पन्नं ज्ञानं अंजसा दिग्भ्रमादिवत् अहं मम इति अज्ञानं तावदेव बाधते यावत् ज्ञानो न भवति।

भाषा—तत्वस्वरूप का अनुभव हो जाने पर यानी जब तुम नही हो [तत्वमसि] इसके अभ्यास से जीव और ब्रह्म की एकता हो जाने पर उसी से प्रगट हुए ज्ञान से शीघ्र ही दिशाओंके भ्रमकी तरह से "मैं" और "मेरा" यह अज्ञान मिट कर शुद्ध रूप दीखने लगता है अर्थात् "अहं" "मम" यह अज्ञान तभी तक बाधा करता है जब तक ज्ञान नहीं होता है।

सम्यग् विज्ञानवान्योगीस्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञान चक्षुषा ४७

अन्वय—सम्यग् विज्ञानवान् योगी ज्ञानचक्षुषा अखिलं स्वात्मनि एव स्थितं सर्वं एकं आत्मानं ईक्षते।

भाषा—योगी अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान वाला पुरुष ज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रपंच को अपनी आत्मा में स्थित और सब को एक ही आत्मा वाला देखता है।

आत्मैवेदं जगत्सर्वं आत्मनोऽन्यन्न विद्यते।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ४८

अन्वय—यद्वद् घटादीनि मृदः तथा इदं जगत् आत्मा एव आत्मनः अन्यत् न विद्यते अतः सर्वं स्वात्मं ईक्षते।

भाषा—जिस प्रकार घट, मठ, प्रभृति जितनी मृत्तिका मिट्टी की बनी हुई चीजे हैं वे मृत्तिका से भिन्न नहीं हैं किन्तु मृत्तिका ही

हैं। उसी प्रकार इस समस्त जगत् का उपादान कारण आत्माही है। आत्मा से अलग कुछ भी नहीं है। योगी पुरुष संसार आत्मा से विभिन्न नहीं जानते हैं।

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत।
सच्चिदानन्द-रूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥४९॥

अन्वयः—जीवन्मुक्तिः तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणान् त्यजेत् भ्रमरकीटवत् सच्चिदानन्दरूपत्वात् भवेत्

भाषा—पहले जो जीव और ब्रह्म की एकता की समाधी कही है उसको जानकर जीवन्मुक्त पुरुष जो पहले के उपाधियों के गुणों को त्याग देता है। जैसे भृङ्गी (एक कीडा है) अपने घरमें किसी के बच्चे को डालकर भिन्न भिन्न करते २ भृङ्गी बना डालता है। उसी प्रकार तत्वमसि इस महावाक्य का अनुध्यान करते २ ब्रह्मज्ञान के साधक भी सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाते हैं।

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादि राक्षसान्।
योगी शान्तसमायुक्तो ह्यात्मारामोभिजायते ५०

अन्वय—योगी मोहार्णव तीर्त्वा रागद्वेषादिराक्षसान् हत्वा शान्त-समायुक्तः आत्मारामः विराजते ॥

भाषा—योगी मोहरूपी समुद्र को पार करके, राक्षस रूपी राग द्वेष आदि का नाश करके शान्ति, दया, ज्ञान, आदि को लेके साथ विराजता है। जैसे रामचन्द्र समुद्र लाँघ कर राक्षसों को मार कर मन्त्री वर्गों के साथ शोभायमान हुए थे।

बाह्यां नित्यसुखासक्तिं हित्वाऽऽत्मसुखनिर्वृतः।
घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वान्त रेव प्रकाशते ५१

अन्वयः—बाह्यां नित्यसुखासक्तिं हित्वा आत्म सुख निर्वृतःस्वच्छ सन् स्वांतः एव घटस्थ दीपवत् प्रकाशते

भाषा—बाहर की इन्द्रियों के झूंठे विषय सुखको छोड़ कर आत्मा के सुखमें ही रमण कर स्वच्छ होकर अपने अन्तःकरण में ही घटके अंदर दीपक के समान प्रकाशमान होता है।

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ५२

अन्वयः—मुनिः उपाधिस्थः अपि तद्धर्मैः न लिप्तः व्योमवत सर्ववित तथापि मूढवत् तिष्ठेत् असक्तः वायुवत् चरेत्

भाषा—मुनि तत्वमसि इस महावाक्यका ध्यान करने वाला उपाधियों के भीतर रहता हुआ भी उपाधियों के सुखादिक धर्मो में नहीं लगता जैसे आकाश में जल और धूलि रहती है परन्तु स्पर्श नहीं होता, सर्वज्ञ होता हुआ भी मूर्ख के समान व्यहार करे कर्माऽनुसार प्राप्त विषयो में लीन नहोकर वायु के समान विचरे। जैसे वायु सुगन्ध दुर्गन्ध सबको स्पर्श करता हुआ भी उसमें आसक्ति नहीं रखता हुआ विचरता है, उसी प्रकार योगी भी विषयासक्ति त्याग कर अपने स्वरूप से विचरे।

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ५३

अन्वयः-यथा जले जलं व्योम्नि वियत् तेजसितेजः तथैव मुनिः उपाधिविलयात् विष्णौ निर्विशेष विशेत्।

भाषा—जैसे जल में जल, अर्थात् वर्षा का पानी गलियों मेंसे बह कर चलता और नदी में मिलकर नदी का रूप बन जाता है। ऐसे ही आकाश में आकाश अर्थात् जैसे घटाकाश घट रूप अपनी उपाधि के टूट जाने पर आकाश में मिल जाता है तेज में तेज यानी दीपक से आग बनाने पर वह भी अग्नि में मिल जाता है। इसी प्रकार मुनि मनन करने वाला योगी शरीररूपी दुःख के न रहने पर व्यापक रूप ब्रह्म में सम्पूर्ण रूप से लीन होजाता है।

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरंसुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५४

अन्वयः—यल्लाभात् अपरः लाभः न, यत्सुखात् अपरं सुखं न; यज्ज्ञानात् अपरं ज्ञानं न, तत् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जिस लाभ के परे दूसरा लाभ नहीं, जिस सुख के परे दूसरा सुख नहीं, जिस ज्ञान के परे दूसरा ज्ञान नहीं,उसीको ब्रह्म रूप निश्चय करें। ब्रह्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण अज्ञान के नाश होने पर ब्रह्मज्ञान होता है। लाभ और सुख भी उससे परे दूसरा नहीं है।

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५५

अन्वयः—यत् दृष्ट्वा परं दृश्यं न, यद्भूत्वा पुनर्भवः न, यज्ज्ञात्वा परं ज्ञानं न तत् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जिसके देख लेने पर दूसरा कुछ देखने को नहीं रह जाता है। ब्रह्म के देख लेने पर सारा संसार दिखने लगता है। ब्रह्मरूप हो जाने पर फिर जगत में जन्म नहीं होता क्योंकि (न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते) इस प्रकार श्रुति कहती है।

अवतरण—उस ब्रह्म की सत्ता की विभूति का वर्णन करते हैं।

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५६

अन्वयः—यत् तिर्यक् ऊर्ध्वं अधः सच्चिदानन्दं पूर्णं अद्वयंअनन्तं नित्यं एकं ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जो पूर्व पश्चिम आदि चारों दिशाओं में ऊपर नीचे सब जगह सच्चिदानन्द परिपूर्ण एक ही है उसके सिवाय और कुछ भी नहीं, इस तरह जो देशकाल वस्तु के परिच्छेद रहित नित्य एक स्वजातीय विजातीय चीज से भी रहित हैं उसी को "ब्रह्म" ऐसा निश्चय जानें।

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम्।
अखण्डानन्दमेकम् यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत ५७

अन्वयः—यत् वेदान्तैः अतद्व्या वृत्तिरूपेण लक्ष्यते अव्ययम् अखण्डानन्दाद् एकं तद् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जो वेदान्त शास्त्र के द्वारा यह नहीं है, यह नहीं है, इस तरह सारा प्रपंच पदार्थ का निषेध करके जो कि स्वयं

निशद्धि नहीं होता वह उसी रूपमें लक्षित होता है। जो अव्यय अर्थात् नाश रूपान्तर रहित है जो कि अखंड अर्थात् सतत् आनन्द रूप है एक स्वजातीय भेद रहित उसी को ब्रह्म मानना चाहिए।

अखंडानंदरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोखिऽला :५८

अन्वयः—तस्य अखण्डनन्दरूपस्य आनन्दलावश्रिताः अखिलाः ब्रह्माद्या तारतम्येन आनन्दिनः भवन्ति ।

भाषा—अखण्डानन्द स्वरूप ब्रह्म के आनन्दका लवक-णिकामात्र लेशमात्र है। उसके आश्रय से सम्पूर्ण ब्रह्मादिक देवता तारतम्य न्यूनाधिक आनन्द युक्त होते हैं । ब्रह्मादिक देवताओं को जो आनन्द है वह भी ब्रह्मानन्द के अवान्तर ही है । योगी समाधिस्थ होकर उसीका अनुभव करते हैं ।

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले५९

अन्वयः-अखिले क्षीरे सर्पि इव तद्युक्तं अखिलं वस्तु व्यवहारः तदन्वितः तस्मात् ब्रह्म सर्वगतम् ।

भाषा—जिस प्रकार दूध के सब अवयवों में घृत अभेद रूपसे रहता है। समस्त घट पट मठ आदि चीज तथा व्यवहार अर्थात् बोलना चलना प्रभृति ब्रह्मसे युक्त होते हैं। इसलिये ब्रह्म हर एक पदार्थ में सर्वथा व्याप्त है।

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ६०

अन्वयः—यत् अनणुअस्थूलं अह्रस्वं अदीर्घं अजं अव्ययम् अरूपगुणवर्णाख्यं तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।

भाषा—जो चीज न सूक्ष्म है, न स्थूल, न छोटा है, न बड़ा है, अज यानी उत्पत्ति रहित अव्यय रूपान्तर रहित रूप गुण तथा ब्राह्मण आदिक वर्ण से अलग है। इसको ब्रह्म जाने।

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ६१

अन्वयः—यद्भासा अर्कादिः भासते यत् भास्यैः न भास्यते येन इदं सर्वं जगत् भाति तद्ब्रह्म इति अवधारयेत् ।

भाषा—जिसके ज्योति से चन्द्रमा, सूर्य, प्रभृति ग्रहगण प्रकाशित होते हैं। जो अपने प्रकाश से प्रकाशित ग्रहगणों से स्वयं प्रकाशित नहीं होता बल्कि जिससे यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। उसको ब्रह्म जाने।

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् ।
ब्रह्म प्रकाशते वह्निः प्रतप्तायसपिण्डवत् ६२

अन्वयः—वह्निः प्रतप्तायसपिण्डवत् अन्तर्बहिः व्याप्य स्वयं प्रकाशते, ब्रह्म अखिलं जगत् भासयन् स्वयं प्रकाशते ।

भाषा—लोहे का गोला आग में तपा देने पर जैसे आग गोलेके भीतर तथा बाहर उस गोले को भी प्रकाशित करती है और स्वयं भी प्रकाशित होती है उसी प्रकार ब्रह्म भी सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता हुआ आप भी प्रकाशित होता है।

जिस प्रकार अग्नि गोले में व्याप्त है ब्रह्म भी जगत के समस्त अवयवों में व्याप्त है। कोई स्थान नहीं जहाँ ब्रह्म न हो ।

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यत्र किञ्चन
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ६३

अन्वयः-ब्रह्म जगद्विलक्षणम् ब्रह्मणः अन्यत्र किञ्चन न चेत् ब्रह्मान्यत् भाति तर्हि यथा मरुमरीचिका मिथ्या तथा ।

भाषा—ब्रह्म जगत से विलक्षण है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है। और जो ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है वह जैसे मृग तृष्णा झूठी है वैसे ही झूठा है ।

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोन्यत्र तद्भवेत्।
तत्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ६४

अन्वयः-यत् दृश्यते यत् श्रूयते तत् ब्रह्मणः अन्यत्र भवेत् तत् ब्रह्म तत्वज्ञानात् सच्चिदानन्दं अद्वयम् ।

भाषा—जो देखते हैं और जो सुनते हैं वह ब्रह्म से दूसरा नहीं है अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्मही है । वह ब्रह्म तत्वज्ञान से ही सच्चिदानन्द और अद्वैत रूप से भासता है।

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत ६५

अन्वयः-ज्ञानचक्षुः सर्वगं सच्चिदात्मानं निरीक्षते, अज्ञान चक्षुः भास्वन्तं न ईक्षेत, अन्धवत् भानुम् ।

भाषा--ज्ञानचक्षु वाले ज्ञानी लोगों को सर्वव्यापी सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म देख पड़ता है। अज्ञानी उस प्रकाशमान आत्मा को नहीं देख सकता, जैसे अन्धा सूर्य्य को नहीं देख सकता है।

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः ।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णं वोद्द्योततेस्वयम् ६६

अन्वयः—श्रवणादिभि उद्दीप्त ज्ञानाग्निपरितापितः जीव सर्वमलात् मुक्तः स्वर्णवत् स्वयं द्योतते ।

भाषा—श्रवण मनन निदिध्यासन इन प्रकारों से उत्पन्न हुईज्ञानरूपी अग्नि से युक्त जीव सब मलों से छूट कर अग्नि से तपे हुए सुवर्ण के समान स्वयं प्रकाशित होता है।

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपनुत ।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्व प्रकाशते ६७

अन्वयः-बोधभानुः आत्मा हृदाकाशोदितः तमोऽपनुत् आत्मा सर्वव्यापी सर्वधारी सर्वं प्रकाशते, भाति।

भाषा—तत्वमसि इत्यादि महावाक्यों से निर्मल बोध रूपी आत्मा सूर्य हृदय रूपी आकाश में उदय होकर अन्तः करण के तमको नाश करता है। आत्मा सब जगत में व्यापक है। जगत के अज्ञान कार्य का अधिष्ठान रूप है। सबको प्रकाशित करता है आप भी प्रकाशमान है।

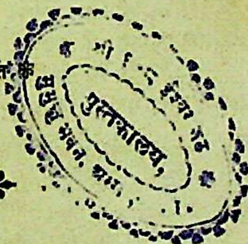
दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखंनिरंजनम् ।

य: स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रिय:
स सर्ववित् सर्वगतो मृतो भवेत ६८

अन्वय:—य:दिग्देशकालाधनपेक्षिसर्वगं शीतादि हृत् नित्यसुख निरंजनम् स्वातमतीर्थं विनिष्क्रिय: भजते स सर्वगत: सर्ववित् अमृत: भवेत् ।

भाषा—जो पुरुष दिशा-पूर्व पश्चिम आदि देश—मरु मालव मगध आदि, काल—भूत भविष्य, वर्तमान आदिकों की अपेक्षा न करके शीत उष्ण इनके नाशक नित्य सुख स्वरूप माया के कार्य जगत रूप मलसे वियुक्त शुद्ध आत्मतीर्थ की सब कार्यों को छोड़ कर सेवा करता है वह सर्वव्यापक सर्व ज्ञाता होकर अमृत रूप हो जाता है। इसलिए मुमुक्षु पुरुषों को आत्मतीर्थ की अवश्य सेवा करनी चाहिए ।

❀ शम इति ❀





कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,

छपगया ?　　छपगया ??　　छप गया ???

महाभारत भाषा

—[सचित्र]—

कई रंगीन चित्र, पृष्ठ संख्या लगभग १०००

--: मोटे टाईप में पक्की जिल्द :—

हालाँकि आज तक बाजार में "महाभारत" नाम की दर्जनों छोटी मोटी पुस्तकें आ चुकी हैं, किन्तु उनमें से एक दो को अपवाद स्वरूप छोड़ शेष सभी अप्रामाणिक तथा असम्बद्ध बातों से भरी पड़ी हैं। यह महाभारत सभी घटनाओं और तथ्यों को पाठकों के सामने अत्यन्त भाव पूर्ण तथा ओज-मयी शैली में रखता है। आप निश्चय ही इसे देखकर प्रसन्न होंगे। इसके लेखक हैं—श्री छविनाथ राय 'पत्रकार' जो अपनी सिद्धहस्त लेखनी के लिए काफी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। मू० ७)

मिलने का पता—

भारत प्रकाशन मन्दिर

कटरा कसेरट मथुरा।